तर्ज़े बयां का नया अंदाज़

निरंजन सहाय

भारत में स्त्री समता और अधिकारों के संघर्ष के इतिहास पर आधुनिक संदर्भों में बहुत ही कम लिखा गया है। आजादी के आन्दोलन और उससे पहले भी महिलाएं अपने विचार लिख रही थीं और महिलाओं की मौजूदा सामाजिक स्थिति पर सवाल भी खड़े कर रही थीं। दिल्ली स्थित स्वयंसेवी संगठन 'निरन्तर' ने मुस्लिम महिलाओं के लेखन को सामने लाने के लिए 'कलामे निस्वाँ' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया है। यह पुस्तक भारत में स्त्री विमर्श को एक नई रोशनी में देखने का एक उदाहरण पेश करती है।

भारत में जेंडर के बारे में नए तरीके से सोच-विचार की प्रक्रिया बहुत पुरानी नहीं है। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दशकों से ही आधुनिक संदर्भों में स्त्रियों की मौजूदगियों को पहचानने और स्थापित करने की मुहिम शुरू हो चुकी थी। आमतौर पर लंबे समय तक सत्ता पर काबिज रहने वाले मुस्लिम आभिजात्य की आधी आबादी के बारे में हमारी समझ इस कदर सतही रही कि हम लगभग यह मान बैठे कि यह तबका पर्दानशीं और खुद के दायरे तक ही महदूद रहा। यह भी कि इन औरतों की सबसे बड़ी कोशिश यही होती थी कि मर्दों की नुमाइंदगी में फना हो जाने को ही जीवन की सबसे बड़ी हकीकत मानें। लेकिन असंवेदनशील शासन और सामाजिक व्यवस्था के पैरोकारों और वर्चस्ववादी समूहों की असलियत को पहचानने, बेनकाब करने और भविष्य की स्त्री भूमिकाओं को रेखांकित करने में मुसलमान महिलाओं की भूमिकाओं का एक शानदार सिलसिला भी रहा है। निरंतर ने इस सिलसिले को बखूबी पहचाना और अपने शोधपरक अभियानों के द्वारा तस्वीर के उस पहलू को प्रकट किया जो अब तक लोगों की नजर में ओझल ही थी। संस्था ने अपने शोधपरक निष्कर्षों को जिस किताब के अंतर्गत शामिल किया है वह हाल ही में 'कलामे निस्वां' नाम से प्रकाशित हुई है। कलाम यानी कथन और निस्वां (निसवा) का मतलब है- महिलाएं। अन्य शब्दों में कहें तो महिलाओं के कथन। शोध और संकलन हुमा खान का है, संपादन पूर्वा भारद्वाज ने किया है।

ऐसा नहीं है कि महिलाओं की दुनिया में अपनी आवाज को प्रकट करने का सिलसिला नहीं रहा। पर यह भी सही है कि स्त्री विमर्श की रोशनी में नए तरीके से उन आवाजों को फिर से पहचानने की कोशिशों ने समझ के अनेक गवाक्षों को समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक, शिक्षायी और सियासी मंजरों के आलोक में प्रकट किया। कलामे निस्वां के विभिन्न संदर्भ हैं, जिन्हें चार मुख्य शीर्षकों में विभाजित किया गया है- दुनिया जहान, हाल हवाल, तर्ज़े तालीम, सरगर्मियां। इन शीर्षकों को अनेक उप-शीर्षकों में भी विभाजित किया गया है। जिन पर संदर्भानुसार विस्तृत चर्चा की जाएगी। किताब के आरंभ में अपनी बात के माध्यम से पुस्तक की जरूरत, दृष्टिबिन्दु, सिद्धांत और अन्य सन्दर्भों का विश्लेषण किया गया है। प्रायः हिंदी पुस्तक संसार में किताबों के दृष्टिबिन्दु सिद्धांतों की चर्चा नहीं की जाती, चलन इस तरह का है कि लेखों/अध्यायों के विवरण, धन्यवाद अदायगी की रस्म से प्रस्तावना का काम संपन्न कर दिया जाता है। पर कलामे निस्वां इस अर्थ में अलग और विशिष्ट है। किताब की यह मान्यता है कि सृजन और अभिव्यक्ति की हर कोशिश गहरे अर्थ में राजनीतिक

लेखक परिचय

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी में हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। समाज, संस्कृति और शिक्षा के अन्तर्संबंधों पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लिखते रहते हैं।

होती है। वर्ग की अवधारणा ने समझ और विश्लेषण के वितान का विस्तार किया, पर नारीवादी सिद्धान्तकारों ने इस समझ को और आगे बढ़ाया, संपादक ने फ्रांचेस्का ऑर्सीनी के हवाले बेहद माकूल टिप्पणी की है, 'जेंडर भी सामाजिक विभेद का एक प्रकार है और यह अधीनता और हाशियाकरण की ओर ले जाता है। वे लोग जो व्यवस्था के भीतर हाशिए पर हैं (यानी औरतें) उनके पास जेंडर की संरचनाओं की ज्यादा और मजबूत तथा पूर्ण समझ हो सकती है।' आगे संपादक ने किताब के दृष्टिबिन्दु सिद्धांत को और भी स्पष्ट किया है, 'नारीवादी दृष्टिबिन्दु सिद्धांत कहता है कि अन्य उत्पीड़ित समूहों की तरह औरतों की सामाजिक अवस्थिति न सिर्फ औरतों के खुद के ज्ञान के स्रोत हैं, बल्कि वह अवस्थति बाकी प्रकृति और सामाजिक संबंधों के ज्ञान का स्रोत भी है। इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि औरतों के अनुभवों या उनकी जिंदगियों का सारतत्वीकरण कर दिया जाए। उनमें विविधता है जो कलामे निस्वां की रचनाओं से भी सामने आती है।' जाहिर सी बात है कि दृष्टिबिन्दु सिद्धांत के निर्धारण के समय ही संपादक खास तौर पर सचेत हैं कि सरलीकरण के फौरी आकर्षणों से बचते हुए स्वरों की विविधता का विशेष ध यान रखा जाए। अपनी बात में हिंदी-उर्दू के परस्पर विरोध की उस भूमिका को रेखांकित किया गया है, जिसके चलते हिंदी, उर्दू जनक्षेत्रों का निर्माण 1873 से 1900 के बीच विशेष रूप से हुआ था। यह वही दौर है, जिस समय संयुक्त प्रांत और बिहार में सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में उर्दू, हिंदी में किसको स्वीकृति मिले इस बात पर घमासान मचा हुआ था। हिंदी जनक्षेत्र का निर्माण और विकास कैसे हुआ इस पर अनेक शोधपरक काम हुए, लेकिन उर्दू जनक्षेत्र पर फिलहाल कोई किताब उपलब्ध नहीं है। किताब एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कराती है, वह यह कि 20 वीं सदी की शुरुआत के साथ राष्ट्रवादी आन्दोलन और सुधारवादी एजेंडा ने जिस तरह हिंदी पत्रकारिता को प्रभावित किया था वैसे ही उर्दू पत्रकारिता को भी किया था। पर उर्दू जनक्षेत्र की निजी विशेषताएं भी थीं। अपनी बात शीर्षक भूमिका में उन स्त्री केन्द्रित उर्दू पत्र-पत्रिकाओं पर एक मुकम्मल नजर डालने की कोशिश भी हुई है, जो 1822 से 1906 के बीच छपीं। उन पत्रिकाओं में कुछ मुद्दे सामान रूप से मौजूद थे, मसलन- औरतों के अधिकार, औरत-मर्द के बीच बराबरी का मसला, सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों पर औरतों की राय आदि। उर्दू की इन पत्र-पत्रिकाओं में जो खास बात हिंदी पत्र-पत्रिकाओं से मिलती-जुलती थी, वह थी पितृसत्तात्मक ढांचे के अनुरूप औरतों को ढालने की मजबूत कोशिश।

'अपनी बात का एक उल्लेखनीय पहलू है उर्दू लेखन संसार में औरतों की शिक्षा से जुड़े मसलों का विश्लेषण, उप-शीर्षक है तरबियत, यानी शिक्षा-दीक्षा। औपनिवेशिक सरकार, राष्ट्र की उभरती अवधारणा, आधुनिकता की मांग- ये औरतों की शिक्षा से जुड़े कुछ अहम् मसले थे। औरतों की तालीम के मुद्दे पर काम करने वाले लोग दोनों तरह के थे- आधुनिक खयाल वाले भी और पारंपरिक भी। उस दौर में वे यथास्थितिवादी जिनका उत्पादन पर नियंत्रण था, उनके द्वारा उन किताबों को जाहिरन ज्यादा पसंद किया गया और अधिकाधिक प्रकाशनों द्वारा आगे बढ़ाया गया जिनमें धार्मिक और सामाजिक ढांचे को चुनौती नहीं दी गई थी। उदाहरण के लिए, 'बहिश्ती जेवर' (मौलाना अशरफ अली थानवी, 1905), बकौल मुबारक अली इसकी रचना का उद्देश्य था औरतें इसे पढ़कर आसानी से पुरुषों की श्रेष्ठता स्वीकार करा लें। ऐसी किताबें आसानी से पाठ्यपुस्तकों का हिस्सा भी बन जाती थीं। उस दौर की वे किताबें, जिन्होंने तालीमे निस्वां यानी शिक्षायी संवाद का माहौल तैयार किया उनमें- 'इंशाए हादिउन निसा' (औरतों के चिट्ठी लिखने के तरीके 1875), 'लुगतउन निसा' (बेगमाती जबान का संकलन 1907)। इस लिहाज से कुछ पत्रिकाएं भी उल्लेखनीय थीं, मसलन - 'रिसालाए बागे निस्वां' (हैदराबाद) 'किताबे निस्वां', 'हिसाबे निस्वां', 'अदबे निस्वां' आदि। पर अभी भी औरतों को केंद्र में रखकर लिखी जा रही रचनाओं में औरतों की आवाजों का शामिल होना बाकी था। इस दौर में इस लिहाज से कुछ घटनाओं ने फिज़ा बदलने का काम किया। 19 अक्तूबर 1906 ई. को वाहिद जहां बेगम की निगरानी में शेख अब्दुल्ला ने अलीगढ़ में जनाना मदरसा शुरू किया। उसी तरह 1908 में भोपाल की बेगम सुल्तान जहां बेगम ने ऑल इंडिया एजुकेशनल कान्फ्रेंस से भोपाल में लड़कियों के स्कूल की पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें बनाने की पेशकश की थी। उस समय की कुछ दिग्गज मुस्लिम महिलाओं ने हवा

के रुख को बदलने में महती भूमिका निभाई, इनमें रुकैया सखावत हुसैन, सुगरा हुमायूं मिर्जा, नजर सज्जाद हैदर, रशीद जहां, इस्मत चुगताई आदि का नाम खास तौर पर उल्लेखनीय हैं।

दीगर यह है कि फिज़ा में एक बदलाव की बयार थी जिसका लक्ष्य था तालीम की राह चलकर आजादी के सूरज की तपिश को महसूस करना। इन आजाद खयाल औरतों के हौसले जितने ऊंचे थे, मर्दवादी व्यवस्था की बंदिशें भी उतनी ही तंग थीं। यह मुश्किल और चुनौतीपूर्ण था कि औरतों के उन स्वरों को संकलित किया जाए, जो औरतों द्वारा औरतों को केंद्र बनाकर लिखे गए। बकौल संपादक 'कलामे निस्वां' में 'तहजीबे निस्वां' 'इस्मत', 'आवाजे निस्वां' , 'पयामे उम्मीद' और 'उस्तानी' से लिए गए मजमून हैं। इन सब पत्रिकाओं में सिर्फ औरतों के मज़मून नहीं छपते थे, मगर हमने कलामे निस्वां में सिर्फ औरतों के लिखे हुए को ही शामिल किया है। हम उनके दृष्टिबिंदु को, उनके खयालात को सामने लाना चाहती थी जिन्होंने कभी रोशनी देखी थी, पर अब उन पर गर्द पड़ गई है। 'गर्द को हटाकर जो रोशनी के कतरे देखे गए, बरास्ते कलामे निस्वां उसे समझना दिलचस्प और विचारोत्तेजक अनुभव है।

किताब का पहला हिस्सा 'दुनिया जहान' उन स्त्रियों की अभिव्यक्तियों पर आधारित है, जिन्होंने देश-विदेश के बारे में अपने अनुभवों को साझा किया है। इसी खंड के दूसरे भाग शख्सियत में हुस्न आरा बेगम, आराम जान बेगम, मलिका बोडसिया, रानी मीरा बाई, ताराबाई जैसी महिलाओं के अविस्मरणीय योगदान की चर्चा है। हाल हवाल के भी दो हिस्से हैं- रहन सहन और रस्मो रिवाज। इस खंड का दूसरा हिस्सा खास तौर पर उल्लेखनीय है। महिलाओं की जिन्दगी पर लेखिकाओं की नजर सूक्ष्म ब्योरों को भी दर्ज करती है। किताब का दावा है कि पत्रिकाओं में शामिल मजहबी लेखों को छोड़ दिया गया है। (पृष्ठ XX) यह सही भी है, लेकिन जैसे हिंदी के पुनर्जागरण में प्रतिक्रियावादी स्वरों का भी असर था, वैसे ही उर्दू का संसार भी था। अच्छा होता यदि उन जटिलताओं को भी उभारा जाता। मसलन 'जनाना लिबास' शीर्षक लेख (मीम. फे. बेगम) इस स्थापना के साथ आगे बढ़ता है कि लिबास का रिश्ता जलवायु से होता है- हर कौम अपना तर्जे मुआशरत अपने आराम और आसाइश से कायम कराती है जिसमें आबो-हवा और मकामी असबाब का बहुत ज्यादा लिहाज किया जाता है। पर लेख तालीमयाता बहनों के नए तौर-तरीकों के पहनावे पर अफसोस जाहिर करता है और गुज़ारिश करता है कि 'मेरा खिताब सिर्फ मुसलमान बहनों से है और चूंकि इस सवाल को एक महदूद फिरके से ताल्लुक है, इसलिए मैं सवाल करती हूं कि बहनों अगर हम तुम अपना अरबी लिबास इख्तियार करें तो क्या खराबी है।' 1910 ई. में जेहरा द्वारा लिखित आप-बीती 'बेमेल विवाह के अस्वीकार के साहस का आह्वान कराती है, इस लिहाज से यह बयान तरक्कीपसंद है, जो उस दौर में आमतौर पर नजर नहीं आती, बहनों! जब कभी तुम्हारी मर्जी के खिलाफ कोई शादी तजवीज हो फौरन इनकार कर दो। इसकी कतई परवाह न करो कि मां-बाप हमारे खुश होंगे या नाखुश।' खाप पंचायतों के दौर में यकीन नहीं होता कि जीवन के बारे में ऐसी स्वाधीन राय की चिनगारी सौ साल पहले ही भड़क चुकी थी।

'तर्ज़े तालीम' किताब का उल्लेखनीय अंश है। इस अंश पर तफ्शील से बात करने की जरूरत है। इस अंश के तीन हिस्से हैं- निसाब व इदारे, बहस व मुबाहसा और हासिल जमा। मिस्री यूनिवर्सिटी का शोबए तालिमे निस्वां' (सैयदा मुसा नाबविया, 1911) औरतों-मर्दों की बराबरी के बारे में साफ राय जाहिर करती है, लेख की स्थापना है कि जो कौम बराबरी के इस फलसफे को नहीं मानती उसे गुलाम तक बनना पड़ता है, हिन्दुओं ने औरतों को गुलाम बनाने में हद से ज्यादा मुकाबला किया। उनकी वहशियाना रस्मों में से एक रस्म ये भी थी कि जब शौहर मारा जाए तो औरत भी उसके साथ जल जाए। इससे मालूम होता है कि हिन्दुओं का ये एतेकाद था कि औरत सिर्फ इसलिए पैदा की गई है कि वो अपने शौहर की लौंडी बनी रहे। और जब वो मर गया तो उसकी जिन्दगी की जरूरत ही नहीं। बड़े-बड़े लोग अपनी बीवियों को जुए में हार जाते थे गोया मिस्ले माल उनको भी बाजी में लगा देते थे। इसका नतीजा ये हुआ कि हिन्दू हमेशा अजनबी कौमों के गुलाम बने रहे।' यह लेख उन आवाजों से जिरह करता है जो यह मानती है की औरतों और शिक्षा का कोई रिश्ता नहीं, जो लोग कहते हैं कि क्यों औरतों को आला तालीम दी जाए, क्या

वो काजी व मुफ्ती बनेंगी? उनसे कह दो की इल्म ही तमाम खूबियों की जड़ है। इंसान बिला तालीम के इंसान नहीं बन सकता। इतना ही नहीं लेखिका स्वनिर्णय के पक्ष में अपनी राय जाहिर करती हैं। 'इल्म तुम्हारे दिमाग को रौशन कर देगा और तुम्हें खुद ब खुद मालूम हो जाएगा कि आइन्दा तुम्हें क्या करना चाहिए।' 'तालीम के मुताल्लिक चंद नुकत' (अहलिया सैय्यद हुमायूं मिर्जा, 1919) लेख में तालीम से जुड़े कई पहलुओं (मसलन तालीम क्या है, तालीम कब शुरू करनी चाहिए, किस तरह करनी चाहिए) की चर्चा है। 'प्राइमरी तालीम' (मिसेज बरलास, 1935) में जापान की उस प्राइमरी तालीम का वर्णन है, जिसमें रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़े मसलों, मसलन व्यक्तिगत, सार्वजनिक सफाई आदि का जिक्र है। इसी खंड में 'बहस मुबाहसा' के अंतर्गत शामिल लेखों में विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक और शिक्षायी मसलों का वर्णन है, जिनका उद्देश्य है बदलाव की आवाजों की हिमायत करना। 'पर्दा और तालीम' (तहजिबुन्निसा बी.ए. 1935) लेख यह बहस करती है कि जो लोग औरतों को परदे का हवाला देकर तालीम से वंचित रखना चाहते हैं, वे लोग दरअसल जाहिल हैं, चाहे वे मजहबी रंग में ही क्यों न रंगे हों। ऐसे खयाल रखने वाले पर लेखिका की राय है, वो हमेशा अपनी मुश्किलात के लिए इन जाहिल मौलवियों के पास जाते हैं जिनको वो हर इल्म में उम्र भर सिखा-पढ़ा सकते हैं। 'हासिल जमा' खंड में अंग्रेजी तालीम, स्त्री अधिकारों जैसे संवेदनशील मुद्दों पर साहसपूर्वक बहस की गई है। तालीम से हासिल रोशनी कैसे तमाम मुश्किलातों से निजात दिलाती है, इससे जुड़े अनेक मसलों पर विचार किया गया है।

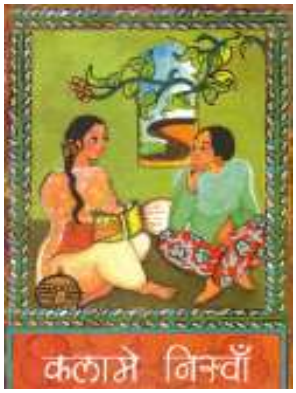

कलामे निस्वाँ
संपादन : पूर्वा भारद्वाज
प्रकाशक : निरंतर, बी-64, दूसरी मंज़िल,
सर्वोदय एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017
पृष्ठ : 252 कवर सहित

'सरगर्मियां' सियासत से जुड़ी औरतों और अन्य सियासी मसलों पर औरतों के विचार को मजबूती से प्रकट करता है। इसे दो हिस्सों में बांटा गया है- तहरीक और फिक्रो नजर। इस हिस्से में हिन्दुस्तान की तत्कालीन स्थिति, इंग्लैंड की औरतों के आंदोलन जैसे नए मसलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किए गए हैं।

'कलामे निस्वां' एक जरूरी किताब है। पहली बात तो यह कि यह अपने ढंग का अकेला ऐसा संकलन है, जिसमें स्त्रियों की उन आवाजों को संकलित किया गया है जिनका फैलाव आधी सदी (1900 से 1951) से भी ज्यादा है। दूसरी बात यह कि इन आवाजों में विविधताएं हैं। तीसरी बात यह कि पूरी किताब की आतंरिक लय में दो आवाजें शुरू से आखीर तक शामिल है- इल्म (शिक्षा) और जदीदियत (आधुनिकता) का नजरिया। किताब का प्रस्तुति आकर्षक है। ◆